



THE TIMES OF INDIA

Date: 11-12-18

## Urjit Patel Exits

*Circumstances suggest RBI governor's resignation is a protest against erosion of its autonomy*

### TOI Editorials

In a stunning development that well-wishers of the Indian economy both at home and abroad have greeted with dismay, RBI governor Urjit Patel has put in a snap resignation. Although he has cited 'personal reasons' for stepping down, this development comes on the heels of an escalating battle of wills between the central bank and Union government. It also comes ahead of the crucial board meeting which was scheduled for Friday, where government was widely expected to demand more concessions from RBI. Like it or not, the message will go out loud and clear that government pushback against the autonomy of one of the most respected, credible and valued institutions in the country has reached intolerable levels.

Indications of deep discord between RBI and government first made headlines after the October speech of RBI deputy governor Viral Acharya in which he cautioned, "Governments that do not respect central bank independence will sooner or later incur the wrath of financial markets, ignite economic fire, and come to rue the day they undermined an important regulatory institution." Fair warning perhaps. That the government is slowly losing its competent economic marshals and cannot retain top-flight economic talent – ranging from Raghuram Rajan to Arvind Panagariya, Arvind Subramanian and now Urjit Patel – is surely cause for great concern.

Significantly Rajan has observed, in the context of Patel's resignation, that such an act must be read as a note of protest. Prior to his resignation, Patel had been putting up stiff resistance to populist pressures ahead of Lok Sabha elections. Investors appreciate this independence. Government must not install a pliant figure in Patel's stead. It's a job for an expert who can take the long view. Alongside, it must work hard to turn around the circumstances that led to Patel's resignation.

---

## बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 11-12-18

## फूलों की खेती के प्रोत्साहन से फैलेगी भारतीय सुगंध

सुरिंदर सूद



फूलों की व्यावसायिक खेती (फ्लोरिकल्चर) ने 1980 के दशक के अंत में बीज नीति को उदार बनाए जाने के बाद तेजी पकड़ी। आज के समय में यह एक लाभदायक कृषि-व्यवसाय बन चुका है। कृषि के काफी हद तक गैर-लाभकारी हो जाने के बाद फूलों की खेती से मिलने वाला रिटर्न अब भी सकारात्मक बना हुआ है। घरेलू एवं निर्यात बाजारों में फूलों की मांग बढ़ने से ऐसा हुआ है। अगर वैज्ञानिक एवं पेशेवर तरीके से फूलों की खेती की जाती है तो यह आय के मामले में अन्य कृषि उद्यमों को पीछे छोड़ने की क्षमता रखता है।

वर्ष 1990 के दशक में अर्थव्यवस्था के दरवाजे बाकी दुनिया के लिए खुलने के बाद फूलों की खेती को उभरते हुए क्षेत्र के तौर पर देखा गया था। उस समय इसे शत-प्रतिशत निर्यातोन्मुख कारोबार का दर्जा दिया गया। इससे इस क्षेत्र को आयकर अवकाश, खास निर्यात शुल्क से छूट और कुछ अन्य सब्सिडी भी मिलने लगी। कृषि एवं प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण (एपीडा) को फूलों की खेती के विकास का दायित्व सौंपा गया है। इसके लिए फूलों का निर्यात बढ़ाने, अतिरिक्त सब्सिडी देने और शीतगृह, रेफ्रिजरेटर सुविधा से युक्त परिवहन साधन एवं नियंत्रित तापमान में फूल उगाने के लिए ग्रीनहाउस (पॉली-हाउस) लगाने जैसी ढांचागत सुविधाओं का प्रसार करने की जिम्मेदारी एपीडा को दी गई है। यह निर्यात के मकसद से भेजी जा रही खेप पर विमान-वहन शुल्क में सब्सिडी भी देता है।

हालांकि भारत अब चीन के बाद दुनिया का दूसरा बड़ा फूल उत्पादक देश बन चुका है लेकिन फूलों के वैश्विक कारोबार में उसकी हिस्सेदारी महज 0.4 फीसदी ही है। इस क्षेत्र का कुल निर्यात वर्ष 2017-18 में 507 करोड़ रुपये रहा था। अंतरराष्ट्रीय फूल बाजार पर नीदरलैंड्स का 60 फीसदी हिस्सेदारी के साथ दबदबा है। केन्या, कोलंबिया और इजरायल जैसे कुछ दूसरे देश भी इस बाजार में तेजी से अपनी पकड़ बना रहे हैं। लेकिन भारत फूलों के निर्यात के मामले में काफी पिछड़ा हुआ है। निर्यात के क्षेत्र में फूलों की गुणवत्ता का मसला काफी अहम होता है। अंतरराष्ट्रीय मानदंडों पर खरा उतरने के लिए फूलों को ग्रीनहाउस ढांचे के भीतर नियंत्रित परिवेश में उपजाना जरूरी होता है। फिलहाल फूलों की खेती वाली कुल जमीन के 2 फीसदी से भी कम हिस्से में ग्रीनहाउस सुविधा उपलब्ध है। इस तरह के अधिकांश फ्लोरिकल्चर फार्म कॉर्पोरेट घरानों के स्वामित्व वाले हैं। वहां पर नीदरलैंड्स, फ्रांस या इजरायल से ली गई तकनीकों का इस्तेमाल होता है। वैसे खुले खेत में फूल उगाने वाले कई किसान भी विदेशों से मंगाई गई आकर्षक प्रजातियों के बीज लगाते हैं लेकिन उनसे उपजे फूल गुणवत्ता के मामले में आम तौर पर ग्रीनहाउस में उपजाए गए फूलों की बराबरी नहीं कर पाते हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) में फ्लोरिकल्चर के सहायक महाप्रबंधक टी जानकीराम कहते हैं कि फूलों की स्वदेशी प्रजातियों को ग्रीनहाउस के भीतर उगाने के लिए उन्हें विकसित किए जाने की जरूरत है। भारत ने शुष्क फूलों के उत्पादन के लिए अच्छी तकनीक ईजाद की है। वैश्विक बाजार में भारत के इन फूलों की अच्छी पहचान बन चुकी है। इन फूलों और उनके मूल्यवर्द्धित उत्पादों का निर्यात बढ़ाने से वैश्विक कारोबार में भारत की हिस्सेदारी बढ़ाने में मदद मिल सकती है। निर्यात कार्गो की पैकेजिंग भी सुधारने की जरूरत है। निर्यात किए जाने वाले देशों के खुदरा बाजार में इन फूलों के पहुंचने तक उनकी ताजगी बनाए रखने के लिए पैकेजिंग पर ध्यान देना जरूरी है। डिहाइड्रेटेड फूलों को खास तरीके की पैकिंग की जरूरत होती है क्योंकि परिवहन के दौरान भी उनके खराब होने की आशंका अधिक रहती है। इसके अलावा भारत फूलों के बीज और उन्हें उगाने में मददगार सामग्रियों का भी निर्यात कर सकता है। वैश्विक बाजार में ऊंची कीमत पर बिकने वाले हाइब्रिड बीजों के उत्पादन की भी बढ़िया संभावना है।

भारत में आर्किड फूलों की विविध किस्में पाई जाती हैं जिनमें से कुछ किस्में तो अपने रूप-रंग में बेहद अनूठी हैं और लोगों को खूब भाती हैं। सिक्किम और उसके आसपास के उत्तर-पूर्वी इलाकों में पाई जाने वाली सिम्बिडियम आर्किड किस्म के फूलों की अमेरिका, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया और जापान जैसे देशों में भारी मांग रहती है। वहीं मिजोरम में एन्थुरियम की बेहतरीन किस्म पाई जाती है। इन फूलों को ग्रीनहाउस आवरण के बगैर खुली जगह में भी उपजाया जा सकता है। लेकिन उनकी खेती संबंधी कृषि-अर्थशास्त्र को संशोधित करने की जरूरत है ताकि उनकी उपज और गुणवत्ता को बेहतर बनाकर प्रतिद्वंद्वियों को मात दी जा सके। हालांकि निर्यात के लिए जरूरी है कि ऐसे फूलों को तोड़े जाने के फौरन बाद विमान से भेजा जाए। असल में, इन फूलों की गुणवत्ता में बड़ी तेजी से ह्रास होता है। उत्तर-पूर्वी राज्यों में हवाई संपर्क सेवा की स्थिति अच्छी न होने और माल-दुलाई का ऊंचा शुल्क होने से इन फूलों का निर्यात बढ़ने में समस्या आती है। भारत से फूलों के निर्यात में विस्तार की संभावनाओं के दोहन के लिए इन मसलों का निदान किया जाना जरूरी है।

*Date: 11-12-18*

## आरबीआई में संकट

### संपादकीय

ऊर्जित पटेल ने भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) के गवर्नर पद से इस्तीफा दे दिया है। देश में उदारीकरण के दौर के बाद यह ऐसा पहला इस्तीफा है। इसने देश में संस्थागत स्वायत्तता को संकट में डाल दिया है। फिलहाल यह आवश्यक है कि सबको चौंका देने वाली इस घटना के बाद सरकार, केंद्रीय बैंक की स्वायत्तता को लेकर भरोसा बहाल करे। एक स्वतंत्र रिजर्व बैंक देश की संस्थागत शक्ति का अहम स्तंभ है और वह देश को वैश्विक पूंजी के लिए भी आकर्षक बनाता है। अतीत की उपलब्धियों के चलते एक आम स्वीकार्यता का भाव उत्पन्न हुआ था कि आरबीआई कमजोर और स्थिर मुद्रास्फीति दर के लिए प्रतिबद्ध है। एक स्वतंत्र केंद्रीय बैंक की दृष्टि से देखा जाए तो यही उचित भी है। ऐसे में आरबीआई के कामकाज के साथ हालिया राजनीतिक हस्तक्षेप चिंतित करने वाली घटना है। आरबीआई के बोर्ड में शामिल स्वतंत्र निदेशक इसका उदाहरण हैं। इस दुर्भाग्यपूर्ण और अप्रत्याशित इस्तीफे के बाद केंद्रीय बैंक के राजनीतिकरण की आशंकाएं और प्रबल हो रही हैं। निश्चित तौर पर पटेल ने केंद्र सरकार के साथ खुला संवाद न रखकर अपने ही खिलाफ काम किया। चाहे जो भी हो लेकिन गत माह आरबीआई बोर्ड की लंबी बैठक के बाद यह आशावादी उम्मीद पैदा हुई थी कि केंद्रीय बैंक और सरकार के बीच टकराव फिलहाल टल गया है। परंतु अब ऐसा प्रतीत हो रहा है कि ऐसी सारी उम्मीदें निराधार थीं।

अब सरकार के लिए यह जरूरी हो गया है कि वह डिप्टी गवर्नरों समेत केंद्रीय बैंक के नेतृत्व में शामिल अन्य लोगों से कहे कि वे कामकाज को सुचारू बनाए रखें। अगर सांस्थानिक खालीपन की स्थिति बन गई तो यह शायद पूरे प्रकरण का सबसे बुरा नतीजा होगा। सरकार को शेयर बाजारों में आई गिरावट जैसी तात्कालिक चिंताओं को हल करने के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। बल्कि उसे लंबी अवधि के दौरान मजबूती और स्थिरता कायम रखने का प्रयास करना चाहिए। इस वक्त सबसे अहम जरूरत इस बात की है कि एक ऐसी व्यवस्था कायम की जाए जिसके जरिए पटेल का सक्षम

उत्तराधिकारी चुना जा सके। इसके साथ ही उसे आरबीआई की स्वायत्तता के प्रति समुचित सम्मान भी दिखाना चाहिए। मौजूदा हालात में गवर्नर के पद के साथ किसी भी तरह की राजनीति कतई समझदारी भरा कदम नहीं होगी।

अगले गवर्नर को मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने और वृहद आर्थिक स्थिरता बरकरार रखने के आरबीआई के लक्ष्य को आगे रखकर चलना होगा। इसके साथ ही उन्हें केंद्र सरकार के साथ स्पष्ट और खुला संवाद रखना होगा। अगर आरबीआई की स्वायत्तता के साथ भी समझौता हुआ और उसे नुकसान पहुंचाया गया तो बीते कुछ वर्षों के दौरान लगातार कमजोर पड़े संस्थानों की सूची में एक और नाम जुड़ जाएगा। उदाहरण के लिए मौजूदा वर्ष की शुरुआत सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीशों के अप्रत्याशित संवाददाता सम्मेलन से हुई जिसमें उच्चतम स्तर पर न्यायिक स्वतंत्रता को लेकर तमाम तरह की चिंता जताई गई। अभी हाल ही में केंद्रीय जांच ब्यूरो के शीर्ष पर बदलाव किए गए क्योंकि इस जांच एजेंसी के दो सबसे वरिष्ठ अधिकारियों के बीच की लड़ाई सार्वजनिक हो गई थी। उसके पहले भी अन्य महत्वपूर्ण संस्थान संकट का सामना कर चुके हैं। उदाहरण के लिए कई अहम कानूनों के मामले में राज्य सभा को दरकिनारा कर दिया गया। आधार अधिनियम को धन विधेयक घोषित कर दिया गया। अब तक ऐसा लोकपाल गठित नहीं किया गया है जो उच्चस्तरीय भ्रष्टाचार के मामलों की जांच कर सके। कुल मिलाकर इससे कोई अच्छी तस्वीर नहीं बनती। अब गैर सरकार के पाले में है। उसे यह दिखाना है कि वह देश के मौद्रिक प्राधिकार की स्वतंत्रता और पारदर्शिता को लेकर प्रतिबद्ध है।

## नईदुनिया

Date: 11-12-18

### सवालों भरा इस्तीफा

**इस्तीफे की खबर आते ही विपक्षी दलों ने सरकार पर निशाना साधना शुरू कर दिया है।**

#### संपादकीय

रिजर्व बैंक के गवर्नर उर्जित पटेल ने भले ही अपने त्यागपत्र के पीछे निजी कारण गिनाया हो, लेकिन शायद ही कोई इस पर यकीन करे कि उनके इस फैसले की वजह वही है जो वह रेखांकित कर रहे हैं। जिन हालात में उन्होंने त्यागपत्र दिया उसके चलते देश-दुनिया को यह संदेश जाना स्वाभाविक है कि केंद्र सरकार से अपने मतभेदों के कारण ही उन्होंने अपना पद त्याग दिया। हालांकि सरकार से अपनी असहमति और पद त्याग की हद तक जाने के संकेत वह पहले ही दे चुके थे, लेकिन कुछ समय पहले सरकार और साथ ही रिजर्व बैंक की ओर से यह आभास कराया गया था कि दोनों पक्षों ने सुलह की राह पर चलने का फैसला किया है।

जानना कठिन है कि जब यह तय हो गया था कि मतभेद वाले मसलों पर एक समिति फैसला लेगी तब फिर यकायक ऐसा क्या हो गया कि उस समिति की रपट आने के पहले ही उर्जित पटेल ने इस्तीफा देना जरूरी समझा? जब सरकार लचीले रवैये का परिचय दे रही थी तो फिर ऐसा ही परिचय उन्होंने क्यों नहीं दिया? इन सवालों के साथ इस सवाल का जवाब भी शायद ही मिले कि उर्जित पटेल ने बैंकों और गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के साथ ही लघु उद्योगों को कर्ज

उपलब्ध कराने जैसे मसलों पर सरकार की चिंताओं को सही तरह समझने की कोशिश की या नहीं? लोकतांत्रिक व्यवस्था में विभिन्न संस्थाओं के बीच मतभेद नए नहीं हैं, लेकिन लोकतंत्र मतभेदों के बीच मिलकर काम करने की भी सीख देता है। अच्छा होता कि उर्जित पटेल त्यागपत्र देने से बचते। उन्हें यह आभास होना चाहिए था कि उनके इस तरह अचानक पद छोड़ देने से आर्थिक जगत को कोई अच्छे संकेत नहीं जाएंगे। देश की अपेक्षा भी यही थी कि अर्थव्यवस्था को सुधारने के तौर-तरीकों को लेकर सरकार और रिजर्व बैंक किसी सहमति पर पहुंचते।

हालांकि वित्त मंत्री के साथ खुद प्रधानमंत्री ने रिजर्व बैंक के गवर्नर के तौर पर उनके योगदान को लेकर उनका आभार जताया है, लेकिन यह तय है कि सरकार को असहज स्थिति से दो-चार होना पड़ेगा। उर्जित पटेल रिजर्व बैंक के पहले ऐसे प्रमुख नहीं जिन्होंने अपना कार्यकाल पूरा होने के पहले ही अपना पद छोड़ा हो, लेकिन उन्होंने जिन हालात में त्यागपत्र दिया उसके चलते सरकार को कहीं अधिक सवाल देने पड़ सकते हैं। इसलिए और भी, क्योंकि इसके पहले रघुराम राजन ने भी सरकार से मतभेदों के चलते अपने अगले कार्यकाल के लिए हामी भरने से इन्कार कर दिया था। इस पर आश्चर्य नहीं कि उनके इस्तीफे की खबर आते ही विपक्षी दलों ने सरकार पर निशाना साधना शुरू कर दिया है। वे पहले से ही सरकार पर यह आरोप मढ़ने में लगे हुए हैं कि यह सरकार संस्थाओं की स्वायत्तता खत्म कर रही है। यह बात और है कि इन्हीं दलों ने नोटबंदी के वक्त उर्जित पटेल को भी खरी-खोटी सुनाई थी। समस्या केवल यह नहीं है कि सरकार को यह भरोसा दिलाना है कि वह रिजर्व बैंक की स्वायत्तता के प्रति प्रतिबद्ध है, बल्कि यह भी सुनिश्चित करना है कि उर्जित पटेल के अचानक त्यागपत्र देने का बुरा असर बैंकों में सुधार की प्रक्रिया पर न पड़े।

राष्ट्रीय  
**सहारा**

Date: 10-12-18

## सत्ता का या जनता का

राजेश मणि



मानवाधिकार दिवस पूरी दुनिया में 10 दिसम्बर को मनाया जाता है। वर्ष 1948 में पहली बार संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 10 दिसम्बर को प्रत्येक वर्ष इसे मनाए जाने की घोषणा की गई थी। किसी भी देश में गरीबी सबसे बड़ी मानवाधिकार चुनौती है, मानवाधिकार दिवस मनाने का मुख्य लक्ष्य गरीबी का उन्मूलन और जीवन को अच्छी तरह जीने में मदद करना है। महिलाओं, बच्चों, युवाओं, नाबालिगों, गरीबों, दिव्यांगजनों या आमजन का क्या आज सतही तौर पर मानवाधिकार संरक्षण एवं संवर्धन हो पा रहा है? यह अपने आप में सवाल है।

निश्चित रूप से भारत में भी मानवाधिकार के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए “मानवाधिकार आयोग” का गठन किया गया है। इसी तरह से महिलाओं के अधिकार एवं संरक्षण के लिए “महिला आयोग” बालकों के लिए “राष्ट्रीय बाल अधिकार एवं संरक्षण आयोग”, अनुसूचित जाति आयोग या ऐसे बहुत सारे आयोग का गठन किया गया कि संबंधित लोगों को उनके अधिकार और सुरक्षा की देखरेख की जा सके। इस वर्ष भी पूर्व की भांति भारत में ही नहीं पूरी दुनिया में 10 दिसम्बर

को “मानवाधिकार दिवस” मनाया जाएगा। मानवाधिकारों की सुरक्षा और संवर्धन की बातें होंगी। बहुत सारे ऐसे कार्यक्रम भी आयोजित होंगे, जिसमें हम “शपथ” तक भी लेंगे कि हम “मानवाधिकारों का हनन” नहीं होने देंगे। यहां यह भी उल्लेखित करना समीचीन प्रतीत होता है कि 2013 में “मानवाधिकार की थीम” थी “20 साल अपने अधिकारों के लिए काम” 2014 में “मानवाधिकार के माध्यम से जीवन को बदलने के 20 साल” 2015 में “हमारा अधिकार हमारी स्वतंत्रता, हमेशा” 2016 में “आज किसी के अधिकारों के लिए खड़ा था” 2017 में “चलो समानता, न्याय और मानव गरिमा के लिए खड़े हो जाओ।”

इस वर्ष 2018 में मानवाधिकार दिवस पर “मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा” की 70वीं वर्षगांठ मनाने के संदर्भ में वर्ष भर अभियान चलाया जाएगा। यह दुनिया का सबसे अधिक अनुवादित दस्तावेज है, जो 500 से अधिक भाषाओं में उपलब्ध है। अभियान का नाम STANDUP4HUMANRIGHTS है। यहां पर पिछले पांच वर्षों के थीम को उल्लेखित किया गया है। अगर सतही तौर पर इसे हम उतारने का प्रयास करते तो आज हम मानवाधिकार से संरक्षण और संवर्धन में बहुत आगे होते। लेकिन एक तरफ तो आयोगों का गठन किया गया; दूसरी तरफ जो कानूनी शक्ति का प्रावधान है, जितना उन्हें मिला वो पर्याप्त नहीं है। ऐसा मानना है। वहीं शुरुआती दौर से ही चाहे वह केंद्र की सरकार रही हो या प्रदेश की सरकार रही हो, ऐसे आयोग में भी सरकार अपने चहेते को ही नियुक्त करती रही है। जिससे कि पारदर्शी रूप जितना आना चाहिए नहीं आ रहा। आयोग भी कोई फैसला लेने में किर्कराव्यविमूढ़ हो जाता है या संवैधानिक शक्तियों के अनुरूप नोटिस/सम्मन और जनसुनवाई कर समस्या समाधान करने का प्रयास करता है। बहुत सारे ऐसे मामले भी सामने आते हैं, जिसमें सरकार के लोग जितनी प्राथमिकता देनी चाहिए आयोग को देते नहीं हैं। सोच में है कि, इंसान के पेट भरने का इंतजाम हो जाए इतना ही काफी है। अभी भी देश में हर तरफ महंगाई और बेरोजगारी की मार है।

इंसान का काम सिर्फ पेट भरने से नहीं चलता। मानव अधिकार के अंतर्गत के सारे अधिकार हैं, जो एक मानव को बुनियादी सुविधाएं और आजादी प्रदान करते हैं। देश में मानवाधिकार के संरक्षण और प्रोत्साहन के लिए शीर्ष संस्था के रूप में स्थापित राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग लोगों के मानवाधिकार को बनाए रखने के लिए बड़े पैमाने पर कार्य करती है। मुख्यतः जो राष्ट्रीय मानवाधिकार के कार्य धारा 12 के तहत निर्धारित किया गया है। किसी भी पीड़ित व्यक्ति द्वारा या उसके सहायतार्थ किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, लोक सेवकों द्वारा उसके मानवाधिकारों के हनन के मामले की शिकायत की सुनवाई करना। किसी लंबितवाद के मामले में न्यायालय की सहमति से उस वाद का निपटारा करना। संविधान और अन्य कानूनों के संदर्भ में मानवाधिकारों के संरक्षण के प्रावधानों की समीक्षा करना और ऐसे प्रावधानों का प्रभावपूर्ण ढंग से लागू करने के लिए सिफारिश करना। आतंकवाद या अन्य विध्वंसक कार्य के संदर्भ में मानवाधिकार को सीमित करने की जांच करना।

मानवाधिकार से संबंधित अंतरराष्ट्रीय संधियों एवं अन्य संबंधित अभिसमयों एवं दस्तावेजों का अध्ययन करना और उनके प्रभावी अनुपालन के लिए सिफारिश करना। भारत में मानवाधिकार को बढ़ावा देने के उद्देश्य से मानवाधिकार के क्षेत्र में शोध करना। समाज के विभिन्न वर्गों में मानवाधिकार से संबंधित जागरूकता बढ़ाना और सेमिनार व अन्य उपलब्ध माध्यमों द्वारा मानवाधिकार को बढ़ावा और संरक्षण के लिए बड़े पैमाने पर लोगों में जागरूकता का प्रसार करना। गैरसरकारी संगठन और अन्य संगठन को बढ़ावा देना, जो मानवाधिकार को बढ़ावा व संरक्षण देने के क्षेत्र में शामिल हैं। ऐसे प्रावधान आयोग के कार्यों में किया गया है। निश्चित रूप से जो मंशा है कि आम जन, दबे-कुचले, शोषित या किसी व्यक्ति का मानवाधिकारों का अगर हनन होता है तो स्वतः संज्ञान लेकर भी “मानवाधिकार आयोग” को आगे आकर उन्हें



मानवाधिकार के हनन से बचाना है। बहुत सारे मामलों में “मानवाधिकार आयोग” स्वतः संज्ञान लेता है। फिर भी आज भी देश में बहुत प्राथमिकता के आधार पर जमीनी स्तर पर कार्य करने की आवश्यकता है।

मीडिया की भूमिका बहुत ही सराहनीय रही है, मानवाधिकार को लेकर। अगर वो फोरम पर ले आते हैं, जो निश्चित रूप से जानकारी हो जाने के बाद आयोग स्वतः संज्ञान ले रहा है। इसी तरह से इसे पंचायत स्तर पर ले जाने की आवश्यकता है कि आम जन जागरूक हो। अगर आम जन जागरूक हो गया तो मानवाधिकार की सुरक्षा और संवर्धन की राह और आसान हो जाएगी। इसके लिए आयोग, सरकार, गैरसरकारी संगठन एवं शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रहे, जो संस्थान हैं, उनको आगे आना होगा। तब जाकर एक परिणामपरक अपेक्षा पर हम खरा उतर सकते हैं। तब हम यह कहने में सक्षम होंगे कि महिलाओं, बच्चों, युवाओं, नाबालिगों, गरीबों, दिव्यांगजन और बुजुर्गों को अपेक्षा के अनुरूप उनके अधिकारों एवं सुरक्षा प्रदान करने में सफल रहे हैं।



Date: 10-12-18

## हकीकत को जानने का नया औजार

**कार्तिक मुरलीधरन, (प्रोफेसर कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी)**

सरकारी दफ्तरों में बैठे हुए हाकिमों को ‘जमीनी हकीकत’ जानने में जो समस्या पेश आती है, वह कोई नई नहीं है। इतिहास बताता है कि अशोक से लेकर अकबर तक तमाम सम्राट सच जानने के लिए वेश बदलकर अपने राज्य में घूमा करते थे। आज भी हमारी सरकारों के लिए यह जानना एक बड़ी चुनौती है कि उनकी जन-हितकारी योजनाएं कैसी चल रही हैं? कनिष्ठ अधिकारी अक्सर इन योजनाओं के क्रियान्वयन की समस्याओं को कम और अपने प्रदर्शन को बढ़ा-चढ़ाकर बताते हैं। इस कारण शीर्ष नेताओं और वरिष्ठ अधिकारियों तक ‘जमीनी हकीकत’ मुश्किल से पहुंच पाती है।

आज के जमाने में जमीनी हकीकत जानने के लिए वेश बदलकर घूमने की बजाय आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल किया जा सकता है। भारत में मोबाइल इस्तेमाल करने वालों की संख्या तेजी से बढ़ी है। साल 2002 में जहां प्रति 100 लोगों में एक मोबाइल था, वहीं 2017 में यह संख्या बढ़कर 62 हो चुकी है। हमारी जिंदगी को मोबाइल ने कई तरह से बदला है, फिर भी सेवा को सुधारने के लिए अब तक इसका इस्तेमाल नहीं किया गया। आज कई योजनाओं में शिकायतें दर्ज करने के लिए हॉटलाइन की सुविधा उपलब्ध है। मगर लाभार्थी शायद ही इनका इस्तेमाल करते हैं। ऐसे में, बेहतर यही होगा कि सरकार खुद संजीदगी के साथ लोगों को फोन करे और सार्वजनिक योजनाओं के बारे में उनके अनुभवों को जाने। इसे नियमित रूप से करने से हमें वास्तविक आंकड़े मिल सकते हैं।

इसका परीक्षण हाल ही में तेलंगाना की एक महत्वपूर्ण योजना- रायथू बंधु (किसानों का मित्र) में किया गया। इस योजना में तेलंगाना सरकार ने किसानों को खेती के हर सीजन में बीज और खाद जैसी महत्वपूर्ण लागत के भुगतान में मदद के लिए प्रति एकड़ 4,000 रुपये दिए। किसानों को पैसे का भुगतान मंडल (उप-जिला) कृषि अधिकारी के कार्यालय से चेक

के रूप में किया गया। यह तेलंगाना सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकता वाली योजना थी और इसकी सावधानीपूर्वक निगरानी भी की गई। फिर भी, जैसा कि आमतौर पर होता है, इसके क्रियान्वयन में तमाम तरह की मुश्किलें आ सकती थीं। मसलन, चेक जारी न होना, उनका सही वितरण न होना, बांटने में देरी या फिर रिश्वत की मांग होना।

इस योजना के तहत दो सप्ताह के भीतर 20,000 से अधिक लाभार्थियों को फोन किया गया। हमने उनसे कुछ बुनियादी सवाल पूछे। जैसे- उन्हें चेक कब और कहां मिला? क्या उन्होंने इसे बैंक में जमा कर धन हासिल किया? और क्या उन्हें इसके लिए रिश्वत भी देनी पड़ी? लगभग 25 फीसदी मंडल कृषि अधिकारियों को यह सूचित किया गया था कि उनके मंडल में ऐसी निगरानी की जा रही है। उनको यह भी बताया गया कि इस निगरानी के आंकड़ों से उनकी व्यक्तिगत प्रदर्शन-रिपोर्ट बनाई जाएगी, जो उनको और उनके वरिष्ठ अधिकारियों को दी जाएगी। खास बात यह थी कि इन 25 फीसदी मंडल कृषि अधिकारियों का चयन लॉटरी के माध्यम से किया गया, जिससे हम फोन निगरानी वाले और बिना निगरानी वाले मंडलों की तुलना करके भरोसेमंद तरीके से निगरानी के प्रभाव का मूल्यांकन कर सकें।

इस सामान्य सी घोषणा का सकारात्मक प्रभाव पड़ा। इस योजना को तेलंगाना राज्य सरकार ने प्राथमिकता दी थी। इसलिए जहां फोन आधारित निगरानी की कोई व्यवस्था नहीं थी, योजना उन इलाकों में भी अच्छी तरह से संचालित हुई। वहां 83 फीसदी किसानों को चेक मिले। हालांकि जहां फोन आधारित निगरानी व्यवस्था थी, वहां पर 1.5 फीसदी अधिक किसानों को चेक मिले। इस निगरानी से उन किसानों को कहीं ज्यादा फायदा पहुंचा, जो वंचित थे। इस वर्ग में निगरानी के कारण 3.3 फीसदी अधिक किसानों को चेक मिले। अच्छी बात यह भी थी कि जिन किसानों के पास फोन नहीं था, उन्हें भी ठीक उसी तरह इस फोन आधारित निगरानी का लाभ मिला, जितना कि फोन रखने वाले किसानों को मिला। यह स्थिति बता रही थी कि मंडल कृषि अधिकारी ने सिर्फ उन्हीं किसानों की सुध नहीं ली, जिनके पास फोन थे। हमने यह सब पता करने के लिए जिस कॉल सेंटर का इस्तेमाल किया, उस पर भी काफी कम खर्च आया। महज 25 लाख रुपये खर्च करके हमने किसानों के लिए अतिरिक्त सात करोड़ रुपये का वितरण पक्का किया। हमारे पास जितनी योजनाओं के आंकड़े हैं, उनमें से इसमें सबसे कम प्रशासनिक लागत (3.6 फीसदी) है।

दूसरी तमाम योजनाओं में इस तरह की रणनीति काफी कारगर हो सकती है। खासतौर से, राशन योजना (पीडीएस) और मनरेगा जैसी प्रमुख योजनाओं में (जहां क्रियान्वयन में ज्यादा कमियां हैं) सुधार की गुजाइश रायथू बंधु योजना से कहीं ज्यादा है। इनमें फोन से निगरानी के साथ-साथ योजनाओं को जमीन पर लागू करने वाले अधिकारियों को प्रोत्साहित करने के लिए पुरस्कार की घोषणा भी की जा सकती है (हालांकि तेलंगाना सरकार ने इस प्रयोग में ऐसा नहीं किया), और आंकड़ों को सार्वजनिक करके समाज में लोकतांत्रिक जवाबदेही की जड़ें मजबूत की जा सकती हैं। नियमित निगरानी से एक बड़ा असर यह भी होगा कि इन्क्रीमेंट (वेतन-वृद्धि), पदोन्नति और नियुक्ति जैसे कर्मियों के प्रबंधन के विषयों में वरिष्ठ अधिकारी कहीं अधिक निष्पक्ष बन सकते हैं। दुनिया भर के अध्ययन यही बताते हैं कि कर्मियों का प्रबंधन शासन का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा होता है।

भारत जब पहले से ही दुनिया को कॉल सेंटर की सेवाएं देने के मामले में सबसे आगे है, तो फिर स्थानीय प्रशासन को सुधारने में हम खुद इसका लाभ क्यों नहीं उठाते? आज दुर्गम इलाकों तक मोबाइल की पहुंच है, और मोबाइल फोन द्वारा कई सामाजिक कार्यक्रमों में लाभार्थियों के अनुभवों से संबंधित आंकड़े जमा किए जा सकते हैं। राशन वितरण से मनरेगा के काम और स्कूलों में शिक्षकों की उपस्थिति तक, सभी में कॉल सेंटर से आंकड़े जमा किए जा सकते हैं। यह



सही है कि दूसरे क्षेत्रों और राज्यों में इस तकनीक को अपनाने के लिए और ज्यादा परीक्षण करने की आवश्यकता है। लेकिन अध्ययन के नतीजे बताते हैं कि इससे शासन-प्रशासन में उल्लेखनीय सुधार की संभावना है।

---

**THE ECONOMIC TIMES**

*Date: 10-12-18*

## **Government Must Correct Own Course**

### **ET Editorials**

Urjit Patel has resigned as governor of the Reserve Bank of India (RBI), 'for personal reasons', according to his statement. Since abrupt departure of the foremost regulator of the economy would upset the markets, that would have been avoided, had a working relationship continued between the governor and the government.

The conclusion is inescapable that he has resigned in protest against being asked to work against his own judgement. To exit was the honourable course, rather than to bite his tongue and follow instructions that he believed pose harm to the institution and the economy. One man's exit should not matter for an economy racing to \$3 trillion in size, it may be argued. It is not one man's removal but the institutional imbalance that reflects in his exit that is a cause for concern. The government must address this.

At the immediate level, this means abandoning the move to set central bank policy through the RBI board, which houses ideologues and partisan nominees. Monetary management and regulation of banking are specialised functions. The board's job is to inform the working of the professional experts at RBI, represented by the governor, his deputies, executive directors and other staff, with the concerns of sections of the population the board members are better acquainted with, not to take over expert functions.

A deeper, structural flaw troubles the relationship between RBI and the government. The law places RBI under the government's control. Yet, modern central banking calls for RBI autonomy. Regulators might be autonomous of the government, but must be accountable to the people. As things stand, RBI is accountable to the government itself, from which it also has to be autonomous and under whose remit the law places it. This contradiction needs statutory remedy. The government must find a suitable successor to Patel, not just any former civil servant. Dialogue, mediated with grace and civility, must guide relations between RBI and the government, not diktat. The economy calls out for such a course correction.

---